INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

# हरियाणा के जींद जिले में कृषि ऋण का किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

*[1]ममता, [2]डॉ. वीरेंद्र सिंह (सहायक प्रोफेसर)*
*[1]शोधार्थी, [2]शोध निर्देशक*
*[1-2]समाजशास्त्र विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक 124021, हरियाणा*

**सार**
कृषि ऋण ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना दोनों से गहराई से जुड़ा हुआ है। हरित क्रांति के बाद हरियाणा की कृषि में बीज, उर्वरक, सिंचाई और मशीनों पर बढ़ते खर्च ने किसानों की ऋण पर निर्भरता को बढ़ाया है। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के कृषक परिवारों के स्थिति आकलन सर्वेक्षण (2019) के अनुसार हरियाणा में प्रति कृषक परिवार औसत बकाया ऋण 1,82,922 रुपये था, जो राष्ट्रीय औसत 74,121 रुपये के ढाई गुने से भी अधिक है। प्रस्तुत अध्ययन जींद जिले के संदर्भ में यह विश्लेषण करता है कि कृषि ऋण ने किसानों की आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक जीवन, जातिगत संबंधों और मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार प्रभावित किया है। अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रविधि पर आधारित है तथा जनगणना, राष्ट्रीय सर्वेक्षणों, नाबार्ड के ग्रामीण वित्तीय समावेशन सर्वेक्षण, सरकारी प्रतिवेदनों और पूर्ववर्ती क्षेत्रीय अध्ययनों से प्राप्त द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग करता है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि संस्थागत ऋण ने सिंचाई, यंत्रीकरण और फसल-उत्पादन में निवेश को संभव बनाया है, परंतु बढ़ती लागत, अस्थिर आय, आढ़तियों पर निर्भरता और विवाह व सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़े खर्चों ने अनेक किसानों को ऋण-जाल में फँसा दिया है। छोटे और सीमांत किसान, काश्तकार तथा भूमिहीन दलित परिवार अनौपचारिक ऋण पर अधिक निर्भर हैं और ऋण का सामाजिक बोझ महिलाओं और युवाओं पर भी पड़ता है। अध्ययन यह निष्कर्ष निकालता है कि कृषि ऋण केवल आर्थिक लेन-देन नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों और शक्ति-संरचना का माध्यम है, अतः ऋण नीति को आय-सुरक्षा, सामाजिक सुधार और संस्थागत पहुँच से जोड़ना आवश्यक है।

**मुख्य शब्द:** कृषि ऋण, ऋणग्रस्तता, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, जींद, हरियाणा, आढ़ती, ग्रामीण समाजशास्त्र

## 1. प्रस्तावना

भारतीय कृषि में ऋण का प्रश्न अत्यंत पुराना है। औपनिवेशिक काल में साहूकारी ऋण किसानों के शोषण और भूमि-हस्तांतरण का प्रमुख कारण माना जाता था, और स्वतंत्रता के बाद सहकारी समितियों, राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विस्तार का उद्देश्य किसानों को साहूकारों के चंगुल से मुक्त कराना था। आज कृषि ऋण का स्वरूप बदल गया है, परंतु उसका महत्व कम नहीं हुआ है। आधुनिक कृषि में बीज, खाद, कीटनाशक, डीज़ल, बिजली, ट्यूबवेल और ट्रैक्टर जैसी लागतें इतनी बढ़ गई हैं कि अधिकांश किसान बिना ऋण के खेती नहीं कर सकते। इसलिए ऋण उत्पादन का एक आवश्यक साधन भी है और संकट का एक संभावित स्रोत भी।

हरियाणा हरित क्रांति का प्रमुख क्षेत्र रहा है। गेहूँ और धान की उच्च उत्पादकता, विकसित मंडी व्यवस्था और न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद ने राज्य के किसानों को अपेक्षाकृत समृद्ध बनाया है। राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार 2018-19 में हरियाणा के कृषक परिवारों की औसत मासिक आय 22,841 रुपये थी, जो राष्ट्रीय औसत 10,218 रुपये से दोगुनी से भी अधिक है (National Statistical Office, 2021)। फिर भी यही राज्य देश के सर्वाधिक ऋणग्रस्त राज्यों में भी शामिल है। समृद्धि और ऋणग्रस्तता का यह सह-अस्तित्व एक समाजशास्त्रीय प्रश्न उठाता है: ऋण किन सामाजिक परिस्थितियों में विकास का साधन बनता है और किन परिस्थितियों में वह किसान परिवारों के लिए सामाजिक-आर्थिक संकट का कारण बन जाता है?

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

जींद जिला हरियाणा के मध्य भाग में स्थित एक प्रमुख कृषि प्रधान जिला है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण है और जीविका का मुख्य आधार खेती, पशुपालन और कृषि-आधारित मजदूरी है। गेहूँ, धान और कपास यहाँ की प्रमुख फसलें हैं, और भूगर्भ जल पर आधारित सिंचाई ने खेती को अधिक पूँजी-प्रधान बना दिया है। ऐसे जिले में कृषि ऋण केवल वित्तीय विषय नहीं रह जाता; यह परिवार की प्रतिष्ठा, विवाह, भूमि के स्वामित्व, जातिगत संबंधों और पीढ़ियों के भविष्य से जुड़ जाता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दृष्टि से जींद जिले के किसानों पर कृषि ऋण के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से इस विषय का महत्व इस तथ्य में है कि ऋण ग्रामीण समाज में संबंधों की एक ऐसी कड़ी है जो परिवार, जाति, बाज़ार और राज्य को एक-दूसरे से जोड़ती है। ऋण लेने और चुकाने के निर्णय केवल आर्थिक गणना पर आधारित नहीं होते; वे सामाजिक अपेक्षाओं, पारिवारिक दायित्वों और सामुदायिक प्रतिष्ठा से भी निर्धारित होते हैं। इसलिए कृषि ऋण के प्रभाव को समझने के लिए आर्थिक आँकड़ों के साथ-साथ उन सामाजिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण भी आवश्यक है जिनके भीतर ऋण का लेन-देन होता है।

## 2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों पर आधारित है:

1. जींद जिले के किसानों के बीच कृषि ऋण के स्रोतों, स्वरूप और प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
2. कृषि ऋण के किसानों की आर्थिक स्थिति, जैसे आय, उत्पादन, परिसंपत्ति और उपभोग पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. कृषि ऋण के सामाजिक प्रभावों, जैसे सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक संबंध, महिलाओं की स्थिति, जातिगत संबंध और मानसिक तनाव का परीक्षण करना।
4. ऋण से संबंधित सरकारी नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना और सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

## 3. सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

कृषि ऋण को समझने के लिए समाजशास्त्र में अनेक सैद्धांतिक दृष्टिकोण उपयोगी हैं। प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से तीन दृष्टिकोणों पर आधारित है:

- **अर्ध-सामंती और परस्पर-बद्ध बाज़ार का दृष्टिकोण:** भादुड़ी के विश्लेषण के अनुसार जब भूमिस्वामी, साहूकार और व्यापारी की भूमिकाएँ एक ही व्यक्ति में केंद्रित होती हैं, तब ऋण किसान को स्थायी निर्भरता में बाँध देता है और उत्पादन में सुधार की प्रेरणा भी कम कर देता है (Bhaduri, 1973)। हरियाणा में आढ़ती द्वारा ऋण देने और उसी के माध्यम से फसल बिकवाने की व्यवस्था इसी प्रकार के परस्पर-बद्ध बाज़ार का उदाहरण है।
- **पूँजी के विविध रूपों का दृष्टिकोण:** बूर्दियू ने आर्थिक पूँजी के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक पूँजी की अवधारणा दी (Bourdieu, 1986)। ग्रामीण समाज में किसान परिवार की प्रतिष्ठा, विवाह-संबंध और सामाजिक नेटवर्क उसकी सामाजिक पूँजी हैं, और अनेक बार किसान इसी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए ऋण लेते हैं।
- **सामाजिक विघटन और प्रतिमानहीनता का दृष्टिकोण:** दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि जब व्यक्ति की आकांक्षाएँ और उसके साधन सामाजिक परिवर्तन के कारण असंतुलित हो जाते हैं, तब प्रतिमानहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है जो गंभीर मानसिक तनाव का कारण बन सकती है (Durkheim, 1951)। कृषि संकट के दौर में ऋणग्रस्तता और सामाजिक अपेक्षाओं का दबाव इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर सकता है।

इन दृष्टिकोणों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन कृषि ऋण को केवल वित्तीय लेन-देन के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक संबंध के रूप में देखता है, जिसमें ऋणदाता और ऋणी के बीच शक्ति, विश्वास, निर्भरता और प्रतिष्ठा के प्रश्न जुड़े होते हैं।

## 4. साहित्य समीक्षा

भारत में कृषि ऋणग्रस्तता पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है। जोधका ने हरियाणा के गाँवों के अध्ययन में दिखाया कि

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

हरित क्रांति के बाद ऋण के स्रोत बदल गए, परंतु किसानों की निर्भरता का स्वरूप बना रहा और व्यापारी-आढ़ती नए ऋणदाता के रूप में उभरे (Jodhka, 1995)। सिद्धू और गिल ने कृषि ऋण और ऋणग्रस्तता से जुड़े मुद्दों की समीक्षा करते हुए यह पाया कि संस्थागत ऋण का विस्तार हुआ है, परंतु छोटे और सीमांत किसान अब भी अनौपचारिक स्रोतों पर अधिक निर्भर हैं (Sidhu & Gill, 2006)।

पंजाब, जो कृषि संरचना में हरियाणा से काफी समान है, पर किए गए अध्ययनों से भी महत्वपूर्ण निष्कर्ष मिलते हैं। शेरगिल ने 1997 से 2008 के बीच पंजाब में कृषि ऋण की तीव्र वृद्धि का विश्लेषण किया और बढ़ती लागत व स्थिर आय को इसका मुख्य कारण बताया (Shergill, 2010)। सतीश ने पंजाब में संस्थागत ऋण, ऋणग्रस्तता और आत्महत्याओं के संबंध की जाँच की (Satish, 2006)। जोधका ने पंजाब की कृषि पर किए गए विश्लेषण में यह तर्क दिया कि वहाँ का संकट केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और बदलती आकांक्षाओं से भी जुड़ा है (Jodhka, 2006)।

देश के अन्य भागों में कृषि संकट पर हुए अध्ययनों ने ऋण के सामाजिक आयाम को और स्पष्ट किया है। देशपांडे ने कर्नाटक में किसानों की आत्महत्याओं के कारणों में फसल विफलता, ऋण और सामाजिक दबाव को प्रमुख माना (Deshpande, 2002)। मोहंती ने महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्याओं को जाति, वर्ग और प्रतिष्ठा के संदर्भ में समझाया (Mohanty, 2005)। मिश्रा ने महाराष्ट्र के अध्ययन में ऋणग्रस्तता और फसल हानि को आत्महत्या के जोखिम से जोड़ा (Mishra, 2006)। वासवी ने ग्रामीण भारत में आत्महत्याओं को व्यक्तिगत कृषि और सामाजिक अलगाव की प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित किया (Vasavi, 2012)। रेड्डी और मिश्रा के संपादित ग्रंथ में कृषि संकट के विविध पहलुओं पर विचार किया गया है (Reddy & Mishra, 2009)।

नीतिगत स्तर पर राधाकृष्ण विशेषज्ञ समूह ने कृषि ऋणग्रस्तता के कारणों का विश्लेषण करते हुए संस्थागत ऋण की पहुँच बढ़ाने और जोखिम-प्रबंधन की व्यवस्था को सुदृढ़ करने की सिफारिश की (Government of India, 2007)। भारतीय रिज़र्व बैंक के आंतरिक कार्यदल ने कृषि ऋण में क्षेत्रीय असमानता, फसल ऋण के दुरुपयोग और दीर्घकालीन निवेश ऋण की कमी पर ध्यान दिलाया (Reserve Bank of India, 2019)। इस साहित्य से स्पष्ट है कि पंजाब और देश के अन्य भागों पर पर्याप्त अध्ययन हुए हैं, परंतु हरियाणा, विशेषकर जींद जैसे जिलों के स्तर पर, कृषि ऋण के सामाजिक प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन इसी अंतराल को भरने का प्रयास करता है।

## 5. अध्ययन क्षेत्र: जींद जिला

जींद जिला हरियाणा के मध्य भाग में स्थित है और 1966 में हरियाणा राज्य के गठन के समय से राज्य का एक जिला है। यह जिला मुख्यतः समतल मैदानी क्षेत्र है, जहाँ नहरों और ट्यूबवेलों से सिंचाई होती है। जिले की सामाजिक संरचना में भू-स्वामी किसान जातियाँ, पिछड़ी जातियाँ और अनुसूचित जातियाँ शामिल हैं, जिनमें से अनुसूचित जातियों के अधिकांश परिवार भूमिहीन या लघु भूमिधारी हैं और कृषि मजदूरी पर निर्भर हैं। तालिका 1 में जनगणना 2011 के आधार पर जिले की मुख्य विशेषताएँ दी गई हैं।

**तालिका 1. जींद जिले की प्रमुख जनांकिकीय विशेषताएँ (जनगणना 2011)**

| विशेषता | जींद जिला |
|---|---|
| कुल जनसंख्या | 13,34,152 |
| लिंगानुपात (प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाएँ) | 871 |
| साक्षरता दर | 71.4 प्रतिशत |
| जनसंख्या का प्रमुख भाग | ग्रामीण |
| प्रमुख फसलें | गेहूँ, धान, कपास, सरसों |
| जीविका का मुख्य आधार | कृषि, पशुपालन और कृषि मजदूरी |

स्रोत: जनगणना भारत 2011, जिला जनगणना पुस्तिका, जींद (Census of India, 2011)।

जिले का कम लिंगानुपात और मध्यम साक्षरता दर यह संकेत देते हैं कि यहाँ की सामाजिक संरचना में परंपरागत

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

मूल्यों का प्रभाव अब भी गहरा है। विवाह, दहेज और पारिवारिक प्रतिष्ठा से जुड़े खर्च सामाजिक अपेक्षाओं का हिस्सा हैं, और यही अपेक्षाएँ कृषि ऋण के उपयोग और उसके बोझ को प्रभावित करती हैं। भूगर्भ जल के गिरते स्तर ने गहरे ट्यूबवेल और अधिक शक्तिशाली पंपों की आवश्यकता बढ़ा दी है, जिससे पूँजी की माँग और ऋण पर निर्भरता दोनों बढ़ी हैं।

## 6. शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

- जनगणना भारत 2011 की जिला जनगणना पुस्तिका, जींद।
- राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय का कृषक परिवारों का स्थिति आकलन सर्वेक्षण (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण का 77वाँ दौर, 2019)।
- नाबार्ड का अखिल भारतीय ग्रामीण वित्तीय समावेशन सर्वेक्षण 2021-22।
- भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रतिवेदन तथा आर्थिक सर्वेक्षण।
- हरियाणा, पंजाब और देश के अन्य भागों में कृषि ऋण और ऋणग्रस्तता पर प्रकाशित क्षेत्रीय अध्ययन।

इन स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों और निष्कर्षों का विश्लेषण चार आयामों में किया गया है: ऋण के स्रोत और स्वरूप, आर्थिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव और नीतिगत प्रतिक्रिया। चूँकि जिला-स्तरीय ऋणग्रस्तता के विस्तृत आँकड़े राष्ट्रीय सर्वेक्षणों में उपलब्ध नहीं होते, इसलिए राज्य-स्तरीय आँकड़ों का उपयोग जिले की स्थिति को समझने के आधार के रूप में किया गया है। अध्ययन की यह सीमा है कि इसमें प्राथमिक क्षेत्र सर्वेक्षण शामिल नहीं है।

## 7. कृषि ऋण की संरचना और प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार 2019 में देश के 50.2 प्रतिशत कृषक परिवार ऋणग्रस्त थे और प्रति कृषक परिवार औसत बकाया ऋण 74,121 रुपये था, जो 2013 के लगभग 47,000 रुपये की तुलना में काफी अधिक है (National Statistical Office, 2021)। हरियाणा और पंजाब जैसे कृषि-समृद्ध राज्यों में यह राशि राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है। तालिका 2 में हरियाणा, पंजाब और अखिल भारतीय स्तर पर औसत ऋण और औसत आय की तुलना की गई है।

**तालिका 2. प्रति कृषक परिवार औसत बकाया ऋण और औसत मासिक आय (2018-19)**

| क्षेत्र | औसत बकाया ऋण (रुपये) | औसत मासिक आय (रुपये) | वार्षिक आय की तुलना में ऋण का अनुपात |
|---|---|---|---|
| हरियाणा | 1,82,922 | 22,841 | 0.67 |
| पंजाब | 2,03,249 | 26,701 | 0.63 |
| अखिल भारत | 74,121 | 10,218 | 0.60 |

स्रोत: राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, कृषक परिवारों का स्थिति आकलन सर्वेक्षण (National Statistical Office, 2021)। अंतिम स्तंभ की गणना औसत ऋण को बारह महीनों की औसत आय से भाग देकर की गई है।

तालिका 2 से स्पष्ट है कि हरियाणा का औसत कृषक परिवार अपनी वार्षिक आय के लगभग दो-तिहाई के बराबर ऋण के बोझ में है। यह अनुपात पंजाब और अखिल भारतीय औसत दोनों से अधिक है। इसका अर्थ यह है कि हरियाणा में आय अपेक्षाकृत अधिक होने के बावजूद ऋण आय की तुलना में तेज़ी से बढ़ा है। राष्ट्रीय स्तर पर कुल बकाया ऋण का लगभग 69.6 प्रतिशत संस्थागत स्रोतों, जैसे बैंकों, सहकारी समितियों और सरकारी एजेंसियों से था, जबकि लगभग 20.5 प्रतिशत ऋण पेशेवर साहूकारों से लिया गया था (National Statistical Office, 2021)। नाबार्ड के सर्वेक्षण के अनुसार 2021-22 में केवल 44 प्रतिशत कृषक परिवारों के पास वैध किसान क्रेडिट कार्ड था (NABARD, 2024)।

संस्थागत ऋण के विस्तार के बावजूद उसकी पहुँच समान नहीं है। बैंकों से मिलने वाला ऋण प्रायः भूमि के आकार और ज़मानत की क्षमता के अनुसार दिया जाता है, जिससे बड़े किसानों को अधिक और सस्ता ऋण मिलता है। प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ, जो कभी छोटे किसानों के लिए ऋण का मुख्य स्रोत थीं, अनेक स्थानों पर वसूली की समस्या और सीमित पूँजी के कारण कमज़ोर हुई हैं। परिणामस्वरूप छोटे किसानों के लिए अनौपचारिक स्रोतों

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

का महत्व बना हुआ है।

जींद जैसे जिलों में ऋण के स्रोतों की संरचना को चार प्रमुख श्रेणियों में समझा जा सकता है:

1. **वाणिज्यिक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक:** फसल ऋण, किसान क्रेडिट कार्ड, ट्रैक्टर और ट्यूबवेल के लिए निवेश ऋण का प्रमुख स्रोत।
2. **प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ:** खाद, बीज और अल्पकालीन फसल ऋण के लिए, विशेषकर छोटे किसानों के बीच।
3. **आढ़ती या कमीशन एजेंट:** मंडी में फसल बिक्री से जुड़े हुए, जो बिना ज़मानत के तुरंत ऋण देते हैं और फसल की बिक्री से उसकी वसूली करते हैं।
4. **साहूकार, रिश्तेदार और गाँव के संपन्न परिवार:** आकस्मिक, सामाजिक और उपभोग संबंधी आवश्यकताओं के लिए, प्रायः ऊँची ब्याज दरों पर।

### 7.1 ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारण

उपलब्ध आँकड़ों और पूर्ववर्ती अध्ययनों के आधार पर जींद और हरियाणा के किसानों में ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है:

1. **बढ़ती उत्पादन लागत:** उर्वरक, कीटनाशक, डीज़ल, बिजली और मशीनों की बढ़ती कीमतें खेती को लगातार महँगा बना रही हैं।
2. **गिरता भूगर्भ जल स्तर:** गहरे ट्यूबवेल और अधिक शक्तिशाली पंपों पर बार-बार होने वाला निवेश दीर्घकालीन ऋण का एक बड़ा कारण है।
3. **जोतों का घटता आकार:** पीढ़ी-दर-पीढ़ी भूमि के बँटवारे से जोतें छोटी हो गई हैं, जबकि परिवार की आवश्यकताएँ और मशीनों पर खर्च कम नहीं हुए।
4. **मूल्य और मौसम का जोखिम:** फसल के मूल्य में उतार-चढ़ाव, कीट-प्रकोप और असमय वर्षा या ओलावृष्टि से होने वाली हानि आय को अनिश्चित बना देती है।
5. **गैर-उत्पादक खर्च:** विवाह, सामाजिक समारोह, मकान निर्माण और बीमारी पर होने वाला खर्च ऋण के एक बड़े भाग को उपभोग की ओर मोड़ देता है।
6. **अनौपचारिक ऋण की ऊँची ब्याज दरें:** आढ़तियों और साहूकारों से लिया गया ऋण तेज़ी से बढ़ता है और मूलधन चुकाना कठिन हो जाता है।

ये कारण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, छोटी जोत वाला किसान संस्थागत ऋण कम पाने के कारण अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर होता है, और फसल हानि की स्थिति में वही महँगा ऋण उसे ऋण-चक्र में फँसा देता है। इसलिए ऋणग्रस्तता को किसी एक कारण से नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक कारकों की एक शृंखला के रूप में समझना आवश्यक है।

## 8. कृषि ऋण का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

### 8.1 आर्थिक प्रभाव

कृषि ऋण का पहला और सकारात्मक प्रभाव उत्पादन में निवेश के रूप में दिखाई देता है। संस्थागत ऋण ने जींद के किसानों को ट्यूबवेल लगाने, ट्रैक्टर और अन्य मशीनें खरीदने, उन्नत बीज और उर्वरकों का उपयोग करने तथा पशुपालन का विस्तार करने में सक्षम बनाया है। हरित क्रांति वाले जिलों में कृषि उत्पादकता की वृद्धि में ऋण-आधारित निवेश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है (Bhalla & Singh, 2012)। परंतु इसी निवेश ने खेती की लागत को स्थायी रूप से बढ़ा दिया है। ऋण के आर्थिक प्रभावों को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

- **उत्पादन लागत में वृद्धि:** डीज़ल, उर्वरक, कीटनाशक और मज़दूरी की लागत लगातार बढ़ी है, जबकि फसल का मूल्य उसी अनुपात में नहीं बढ़ा।
- **यंत्रीकरण का दबाव:** छोटी जोतों के बावजूद ट्रैक्टर जैसी मशीनें खरीदना प्रतिष्ठा और सुविधा का विषय बन गया है, जिससे कई परिवारों पर उनकी क्षमता से अधिक निवेश ऋण आ गया।

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

- **आय की अस्थिरता:** मौसम, कीट-प्रकोप और बाज़ार मूल्य में उतार-चढ़ाव के कारण एक भी फसल की विफलता ऋण चुकाने की क्षमता को समाप्त कर सकती है।
- **ऋण-चक्र:** पुराना ऋण चुकाने के लिए नया ऋण लेने की प्रवृत्ति किसान को एक स्थायी चक्र में फँसा देती है, जिसमें ब्याज का बोझ लगातार बढ़ता जाता है।
- **भूमि और परिसंपत्ति की हानि:** गंभीर ऋणग्रस्तता की स्थिति में किसान पशुधन, आभूषण या भूमि का कुछ भाग बेचने के लिए विवश हो जाते हैं, जिससे उनकी दीर्घकालीन आर्थिक सुरक्षा कमज़ोर होती है।

### 8.2 सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रदर्शनकारी उपभोग

ग्रामीण हरियाणा में किसान परिवार की प्रतिष्ठा उसकी भूमि, घर, वाहन, और विवाह जैसे सामाजिक आयोजनों के स्तर से आँकी जाती है। अनेक किसान अपने ऋण का एक भाग उत्पादन के बजाय विवाह, मकान निर्माण, वाहन खरीद या सामाजिक समारोहों पर खर्च करते हैं। बूर्दियू की अवधारणा के अनुसार यह आर्थिक पूँजी को सामाजिक पूँजी में बदलने का प्रयास है, जिससे परिवार की सामाजिक स्थिति बनी रहती है (Bourdieu, 1986)। परंतु जब यह खर्च उत्पादक आय से अधिक हो जाता है, तब वही प्रतिष्ठा ऋण के बोझ का कारण बन जाती है। पंजाब के अनुभव से भी पता चलता है कि सामाजिक अपेक्षाओं और प्रतिष्ठा से जुड़े खर्च ग्रामीण ऋणग्रस्तता को बढ़ाने वाले प्रमुख कारकों में से हैं (Jodhka, 2006)।

### 8.3 परिवार और महिलाओं पर प्रभाव

ऋण का बोझ केवल परिवार के मुखिया तक सीमित नहीं रहता। ऋणग्रस्त परिवारों में बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य पर खर्च और पोषण पर कटौती की जाती है। संयुक्त परिवारों में भूमि के बँटवारे और ऋण के दायित्व को लेकर विवाद भी उत्पन्न होते हैं। महिलाओं पर इसका प्रभाव कई रूपों में दिखाई देता है:

- घरेलू खर्च में कटौती का सबसे अधिक बोझ महिलाओं पर पड़ता है, जो परिवार के भोजन और आवश्यकताओं का प्रबंधन करती हैं।
- ऋण चुकाने के लिए अक्सर महिलाओं के आभूषण गिरवी रखे या बेचे जाते हैं, जो उनकी व्यक्तिगत आर्थिक सुरक्षा का मुख्य आधार होते हैं।
- पशुपालन और खेत में अतिरिक्त श्रम का बोझ बढ़ जाता है, क्योंकि परिवार मज़दूरों पर खर्च कम करने का प्रयास करता है।
- ऋण से जुड़ा मानसिक तनाव पारिवारिक कलह और घरेलू हिंसा के जोखिम को बढ़ा सकता है, जिसका प्रभाव महिलाओं और बच्चों पर सबसे अधिक होता है।

भूमि का स्वामित्व अधिकांशतः पुरुषों के नाम होने के कारण महिलाएँ संस्थागत ऋण तक सीधी पहुँच नहीं रखतीं, जबकि ऋण के परिणामों का बोझ वे समान रूप से या उससे अधिक उठाती हैं। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से कुछ महिलाओं को लघु ऋण की सुविधा मिली है, परंतु कृषि उत्पादन के लिए उसकी मात्रा सीमित है।

### 8.4 जाति, वर्ग और ऋण तक पहुँच

कृषि ऋण तक पहुँच भूमि के स्वामित्व से गहराई से जुड़ी है, क्योंकि संस्थागत ऋण के लिए भूमि ज़मानत के रूप में आवश्यक होती है। जींद जैसे जिलों में भूमि का स्वामित्व मुख्यतः भू-स्वामी किसान जातियों के पास है, जबकि अनुसूचित जातियों के अधिकांश परिवार भूमिहीन हैं। परिणामस्वरूप ऋण की संरचना में एक स्पष्ट सामाजिक विभाजन दिखाई देता है:

- **बड़े और मध्यम किसान** बैंकों से कम ब्याज पर ऋण प्राप्त कर सकते हैं और उसका उपयोग निवेश के लिए करते हैं।
- **छोटे और सीमांत किसान** को संस्थागत ऋण अपर्याप्त मिलता है, इसलिए वे आढ़तियों और साहूकारों पर निर्भर रहते हैं।
- **काश्तकार और ठेके पर खेती करने वाले किसान** भूमि के स्वामी न होने के कारण संस्थागत ऋण से लगभग वंचित रहते हैं, जबकि उनकी लागत में भूमि का किराया भी शामिल होता है।

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

- **भूमिहीन दलित परिवार** उपभोग, बीमारी और विवाह के लिए अक्सर गाँव के संपन्न परिवारों से ऋण लेते हैं, जिससे उनकी आर्थिक निर्भरता सामाजिक अधीनता में बदल सकती है।

इस प्रकार ऋण गाँव की जातिगत और वर्गीय संरचना को प्रतिबिंबित भी करता है और उसे पुनरुत्पादित भी करता है। जोधका का अध्ययन यह दर्शाता है कि हरियाणा में ऋण-संबंध लंबे समय से निर्भरता और संरक्षण के संबंधों के साथ जुड़े रहे हैं (Jodhka, 1995)।

### 8.5 युवा, शिक्षा और व्यवसाय परिवर्तन

ऋणग्रस्तता और घटती कृषि आय ने ग्रामीण युवाओं की आकांक्षाओं को भी प्रभावित किया है। बड़ी संख्या में युवा खेती को जोखिमपूर्ण और कम प्रतिष्ठित व्यवसाय मानकर सरकारी नौकरी, सेना, निजी क्षेत्र या विदेश में रोज़गार की तलाश करते हैं। कई परिवार बच्चों की उच्च शिक्षा या विदेश जाने के खर्च के लिए भी ऋण लेते हैं, जिससे ऋण का स्वरूप उत्पादन से हटकर सामाजिक गतिशीलता की ओर मुड़ जाता है। यह प्रवृत्ति परिवार को भविष्य में बेहतर अवसर दे सकती है, परंतु यदि रोज़गार न मिले तो ऋण का बोझ और बढ़ जाता है।

### 8.6 मानसिक तनाव और सामाजिक अलगाव

ऋण चुकाने में असमर्थता किसान के लिए केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सम्मान और आत्म-छवि की समस्या भी है। ग्रामीण समाज में ऋण न चुका पाना सार्वजनिक अपमान का कारण माना जाता है, और वसूली का दबाव किसान को गहरे मानसिक तनाव में डाल सकता है। देश के विभिन्न भागों में हुए अध्ययनों ने ऋणग्रस्तता, फसल विफलता और सामाजिक दबाव को किसानों में गंभीर मानसिक संकट से जोड़ा है (Mohanty, 2005)। दुर्खीम की अवधारणा के अनुसार यह स्थिति सामाजिक विनियमन के कमज़ोर होने और आकांक्षाओं तथा साधनों के असंतुलन से उत्पन्न प्रतिमानहीनता की ओर संकेत करती है (Durkheim, 1951)। इसलिए ऋणग्रस्त किसानों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सहायता और सामुदायिक समर्थन की व्यवस्था भी उतनी ही आवश्यक है जितनी आर्थिक राहत।

### 8.7 पशुपालन और वैकल्पिक आजीविका

जींद के ग्रामीण परिवारों में पशुपालन, विशेषकर भैंस और गाय पालन, आय का एक महत्वपूर्ण पूरक स्रोत है। अनेक परिवार दुधारू पशु खरीदने के लिए भी ऋण लेते हैं, क्योंकि दूध की बिक्री से नियमित नकद आय मिलती है जो फसल आय की अनिश्चितता को कुछ हद तक संतुलित करती है। छोटे और भूमिहीन परिवारों के लिए पशुपालन ऋण चुकाने का एक व्यावहारिक साधन बन जाता है। परंतु पशुओं की बीमारी, चारे की बढ़ती कीमत और दूध के अस्थिर मूल्य इस आय को भी जोखिमपूर्ण बना देते हैं। इसलिए पशुपालन तभी ऋणग्रस्तता को कम करने में सहायक हो सकता है जब पशु बीमा, पशु चिकित्सा और सहकारी दुग्ध संग्रह जैसी सहायक व्यवस्थाएँ सुदृढ़ हों।

## 9. आढ़ती-किसान संबंध और अनौपचारिक ऋण

हरियाणा और पंजाब की मंडी व्यवस्था में आढ़ती एक केंद्रीय भूमिका निभाता है। वह किसान की फसल की बिक्री करवाता है, सरकारी खरीद के भुगतान का माध्यम रहा है, और पूरे वर्ष किसान को खाद, बीज, घरेलू खर्च, विवाह या बीमारी के लिए ऋण भी देता है। यह संबंध किसान के लिए सुविधाजनक है, क्योंकि आढ़ती बिना कागज़ी कार्यवाही और ज़मानत के तुरंत पैसा दे देता है। परंतु यही संबंध किसान को स्थायी रूप से एक ही आढ़ती से बाँध देता है। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- ऋण की वसूली फसल के भुगतान से सीधे कर ली जाती है, जिससे किसान के हाथ में बहुत कम नकद राशि बचती है।
- ब्याज दरें प्रायः बैंक की दरों से काफी अधिक होती हैं और उनका हिसाब पारदर्शी नहीं होता।
- किसान दूसरी मंडी या दूसरे खरीदार के पास जाने की स्वतंत्रता खो देता है।
- सामाजिक विश्वास और पीढ़ियों पुराने संबंध इस निर्भरता को नैतिक दायित्व का रूप दे देते हैं।

यह व्यवस्था भादुड़ी द्वारा वर्णित परस्पर-बद्ध बाज़ारों का आधुनिक रूप है, जिसमें ऋण और उत्पाद-बाज़ार एक ही संबंध में जुड़ जाते हैं (Bhaduri, 1973)। फसल खरीद का भुगतान सीधे किसानों के बैंक खातों में किए जाने से इस निर्भरता में कुछ परिवर्तन आया है, परंतु आढ़तियों की ऋणदाता के रूप में भूमिका अब भी बनी हुई है।

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

**10. कृषि ऋण और ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन: एक समाजशास्त्रीय विवेचना**

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कृषि ऋण ग्रामीण समाज में होने वाले व्यापक सामाजिक परिवर्तन का एक दर्पण है। पारंपरिक ग्रामीण समाज में ऋण संबंध प्रायः संरक्षक और आश्रित के बीच के स्थायी सामाजिक संबंधों का हिस्सा थे, जिनमें आर्थिक निर्भरता के साथ सामाजिक अधीनता भी जुड़ी रहती थी। हरित क्रांति और बाज़ारीकरण के बाद ये संबंध अधिक औपचारिक और मौद्रिक हो गए हैं, परंतु पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं। आढ़ती-किसान संबंध और भूमिहीन परिवारों की संपन्न परिवारों पर निर्भरता यह दिखाती है कि बाज़ार और परंपरा आज भी एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं।

इस परिवर्तन के कुछ प्रमुख सामाजिक आयाम निम्नलिखित हैं:

- **व्यक्तिकरण:** संयुक्त परिवारों के विघटन और भूमि के बँटवारे के साथ ऋण का दायित्व भी व्यक्तिगत होता गया है, जिससे संकट के समय परिवार और समुदाय से मिलने वाला सहारा कमज़ोर हुआ है।
- **उपभोक्तावाद और आकांक्षा:** शहरी जीवन-शैली, शिक्षा और उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती आकांक्षाओं ने ग्रामीण परिवारों के खर्च के स्वरूप को बदला है, जबकि कृषि आय उसी गति से नहीं बढ़ी।
- **जाति और वर्ग के नए समीकरण:** भू-स्वामी किसान जातियों के भीतर भी आर्थिक विभेदीकरण बढ़ा है, जिससे एक ही जाति के भीतर संपन्न और ऋणग्रस्त परिवारों के बीच दूरी बढ़ी है।
- **राज्य की बढ़ती भूमिका:** संस्थागत ऋण, प्रत्यक्ष आय सहायता और फसल बीमा के माध्यम से राज्य किसानों के जीवन में एक प्रत्यक्ष भागीदार बन गया है, और ऋण माफ़ी जैसे प्रश्न ग्रामीण राजनीति के केंद्र में आ गए हैं।

इस प्रकार कृषि ऋण केवल आर्थिक संकट का सूचक नहीं, बल्कि ग्रामीण हरियाणा में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तन का भी संकेतक है। इस परिवर्तन में ऋण एक साथ अवसर और जोखिम दोनों का माध्यम है: वह किसानों को आधुनिक कृषि और सामाजिक गतिशीलता की ओर ले जा सकता है, परंतु यदि सहायक संस्थाएँ कमज़ोर हों, तो वही ऋण सामाजिक असमानता और असुरक्षा को गहरा कर सकता है।

**11. सरकारी नीतियाँ और उनकी सीमाएँ**

केंद्र और राज्य सरकारों ने कृषि ऋण की पहुँच बढ़ाने और किसानों पर उसके बोझ को कम करने के लिए अनेक नीतियाँ अपनाई हैं। प्रमुख नीतियाँ इस प्रकार हैं:

1. **किसान क्रेडिट कार्ड योजना (1998):** फसल और संबंधित आवश्यकताओं के लिए लचीला अल्पकालीन ऋण, जिसे बाद में पशुपालन और मत्स्य पालन तक बढ़ाया गया।
2. **ब्याज अनुदान योजना:** समय पर फसल ऋण चुकाने वाले किसानों को रियायती ब्याज दर पर ऋण।
3. **प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (2019):** पात्र किसान परिवारों को प्रति वर्ष 6,000 रुपये की प्रत्यक्ष आय सहायता।
4. **प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (2016):** प्राकृतिक आपदाओं और फसल हानि की स्थिति में बीमा सुरक्षा।
5. **हरियाणा की भावांतर भरपाई योजना (2018) और मेरी फसल मेरा ब्यौरा पोर्टल:** कुछ फसलों के लिए मूल्य अंतर की भरपाई और फसल पंजीकरण के माध्यम से खरीद व सहायता को व्यवस्थित करना।

इन नीतियों ने संस्थागत ऋण और आय सहायता का विस्तार अवश्य किया है, परंतु इनकी कुछ सीमाएँ भी स्पष्ट हैं। किसान क्रेडिट कार्ड की पहुँच अब भी आधे से कम कृषक परिवारों तक है (NABARD, 2024)। काश्तकार और भूमिहीन किसान अधिकांश योजनाओं के दायरे से बाहर रह जाते हैं। फसल बीमा के दावों के भुगतान में देरी और जटिल प्रक्रिया की शिकायतें आम हैं। ऋण माफ़ी जैसे उपाय अल्पकालीन राहत देते हैं, परंतु ऋणग्रस्तता के मूल कारणों, जैसे बढ़ती लागत और अस्थिर आय, को दूर नहीं करते। आर्थिक सर्वेक्षण में भी कृषि में आय विविधीकरण, पशुपालन और मूल्य संवर्धन की आवश्यकता पर बल दिया गया है (Government of India, 2025)।

INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, COMMERCE & EDUCATION
A Multidisciplinary Peer-Reviewed, Refereed, Open Access Journal,
https://avjournals.com/ e-ISSN: 2347-7687, Vol 14, Issue 3, July-September 2026

## 12. सुझाव

अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर जींद जिले और हरियाणा के किसानों के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं:

1. **संस्थागत ऋण का विस्तार:** छोटे, सीमांत और काश्तकार किसानों को बिना भूमि-ज़मानत के ऋण देने हेतु संयुक्त देयता समूहों और किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से व्यवस्था की जाए।
2. **आढ़ती ऋण का विनियमन:** आढ़तियों द्वारा दिए जाने वाले ऋण का पंजीकरण, ब्याज दर की सीमा और लिखित हिसाब अनिवार्य किया जाए।
3. **आय सुरक्षा:** न्यूनतम समर्थन मूल्य पर प्रभावी खरीद, फसल विविधीकरण और पशुपालन, डेयरी तथा कृषि-प्रसंस्करण के माध्यम से आय के स्रोतों का विस्तार किया जाए।
4. **सामाजिक सुधार:** विवाह और सामाजिक आयोजनों पर होने वाले प्रदर्शनकारी खर्च को कम करने के लिए पंचायतों, सामाजिक संगठनों और खाप जैसी सामुदायिक संस्थाओं के माध्यम से जन-जागरूकता अभियान चलाया जाए।
5. **वित्तीय साक्षरता:** किसानों और विशेषकर ग्रामीण युवाओं व महिलाओं को ऋण के उत्पादक उपयोग, ब्याज की गणना और बचत के बारे में प्रशिक्षण दिया जाए।
6. **महिलाओं की पहुँच:** संयुक्त भू-स्वामित्व को प्रोत्साहित किया जाए और महिला किसानों को सीधे ऋण और प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए।
7. **मानसिक स्वास्थ्य सहायता:** ऋणग्रस्त किसानों के लिए ग्राम स्तर पर परामर्श और हेल्पलाइन की व्यवस्था की जाए।
8. **जिला-स्तरीय आँकड़े:** जिले स्तर पर कृषि ऋणग्रस्तता के नियमित सर्वेक्षण किए जाएँ, ताकि नीतियाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप बनाई जा सकें।

## 13. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हरियाणा के जींद जिले में कृषि ऋण किसानों के जीवन का एक अनिवार्य और जटिल अंग है। एक ओर ऋण ने सिंचाई, यंत्रीकरण और उत्पादन में निवेश को संभव बनाकर कृषि विकास में योगदान दिया है, वहीं दूसरी ओर बढ़ती लागत, अस्थिर आय और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़े खर्चों ने अनेक किसानों को ऋण-जाल में फँसा दिया है। हरियाणा में प्रति कृषक परिवार औसत ऋण राष्ट्रीय औसत से ढाई गुना से अधिक है और वार्षिक आय के लगभग दो-तिहाई के बराबर है, जो इस समस्या की गंभीरता को दर्शाता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से कृषि ऋण केवल आर्थिक लेन-देन नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों का एक माध्यम है। यह आढ़ती और किसान के बीच निर्भरता, भू-स्वामी और भूमिहीन के बीच शक्ति-संबंध, परिवार के भीतर स्त्री-पुरुष संबंध, और सामाजिक प्रतिष्ठा की प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करता है। छोटे और सीमांत किसान, काश्तकार, भूमिहीन दलित परिवार और महिलाएँ इसके नकारात्मक प्रभावों से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। अतः कृषि ऋण की समस्या का समाधान केवल ऋण की उपलब्धता बढ़ाकर नहीं किया जा सकता; इसके लिए आय-सुरक्षा, सामाजिक सुधार, संस्थागत पहुँच में समानता और मानसिक स्वास्थ्य सहायता को एक साथ जोड़ना आवश्यक है। ऐसी समग्र नीति ही ऋण को किसानों के लिए बोझ के बजाय विकास का साधन बना सकती है।

**अध्ययन की सीमाएँ और भावी शोध की दिशा:** प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है और जिला-स्तरीय विस्तृत ऋण आँकड़ों के अभाव में राज्य-स्तरीय आँकड़ों का उपयोग करता है। भविष्य में जींद जिले के विभिन्न खंडों में प्राथमिक क्षेत्र सर्वेक्षण के माध्यम से भूमि-आकार, जाति और लिंग के आधार पर ऋणग्रस्तता के तुलनात्मक अध्ययन किए जा सकते हैं।

## संदर्भ सूची

1. भादुड़ी, ए. (1973). अर्ध-सामंतवाद के अंतर्गत कृषि पिछड़ेपन का एक अध्ययन। द इकोनॉमिक जर्नल, 83(329), 120–137।
2. भल्ला, जी. एस., एवं सिंह, जी. (2012). आर्थिक उदारीकरण और भारतीय कृषि: जिला-स्तरीय अध्ययन। सेज पब्लिकेशन्स।
3. बोरदियू, पी. (1986). पूँजी के स्वरूप। जे. जी. रिचर्डसन (संपा.), शिक्षा के समाजशास्त्र के सिद्धांत एवं अनुसंधान की हस्तपुस्तिका (पृ. 241–258) में। ग्रीनवुड प्रेस।
4. भारत की जनगणना। (2011). जिला जनगणना पुस्तिका: जींद। जनगणना संचालन निदेशालय, हरियाणा।
5. देशपांडे, आर. एस. (2002). कर्नाटक में किसानों द्वारा आत्महत्या: कृषि संकट एवं संभावित निवारण उपाय। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 37(26)।
6. दुर्खीम, ई. (1951). आत्महत्या: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (जे. ए. स्पॉल्डिंग एवं जी. सिम्पसन, अनुवादक)। फ्री प्रेस।
7. भारत सरकार। (2007). कृषि ऋणग्रस्तता पर विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट। वित्त मंत्रालय।
8. भारत सरकार। (2025). आर्थिक सर्वेक्षण 2024–25। वित्त मंत्रालय।
9. जोधका, एस. एस. (1995). ऋण, निर्भरता और कृषि परिवर्तन। रावत पब्लिकेशन्स।
10. जोधका, एस. एस. (2006). 'संकट' से आगे: समकालीन पंजाब की कृषि पर पुनर्विचार। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 41(16)।
11. मिश्रा, एस. (2006). महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्याएँ। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 41(16)।
12. मोहंती, बी. बी. (2005). 'हम जीवित मृतकों के समान हैं': पश्चिमी भारत के महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्याएँ। द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 32(2), 243–276।
13. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)। (2024). नाबार्ड अखिल भारतीय ग्रामीण वित्तीय समावेशन सर्वेक्षण (NAFIS) 2021–22। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।
14. राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय। (2021). भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि परिवारों की स्थिति का आकलन तथा परिवारों के पास भूमि एवं पशुधन का स्वामित्व, 2019 (एनएसएस रिपोर्ट संख्या 587)। सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय।
15. रेड्डी, डी. एन., एवं मिश्रा, एस. (संपा.). (2009). भारत में कृषि संकट। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. भारतीय रिज़र्व बैंक। (2019). कृषि ऋण की समीक्षा हेतु आंतरिक कार्य समूह की रिपोर्ट। भारतीय रिज़र्व बैंक।
17. सतीश, पी. (2006). पंजाब में संस्थागत ऋण, ऋणग्रस्तता और आत्महत्याएँ। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 41(26)।
18. शेरगिल, एच. एस. (2010). पंजाब में कृषि ऋण की वृद्धि: 1997 से 2008 तक। विकास एवं संचार संस्थान।
19. सिद्धू, आर. एस., एवं गिल, एस. एस. (2006). भारत में कृषि ऋण और ऋणग्रस्तता: कुछ प्रमुख मुद्दे। इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 61(1), 11–35।
20. वासवी, ए. आर. (2012). छाया क्षेत्र: आत्महत्याएँ और ग्रामीण भारत की दुर्दशा। थ्री एसेज कलेक्टिव।